आत्म शान्ति का स्रोत सामायिक

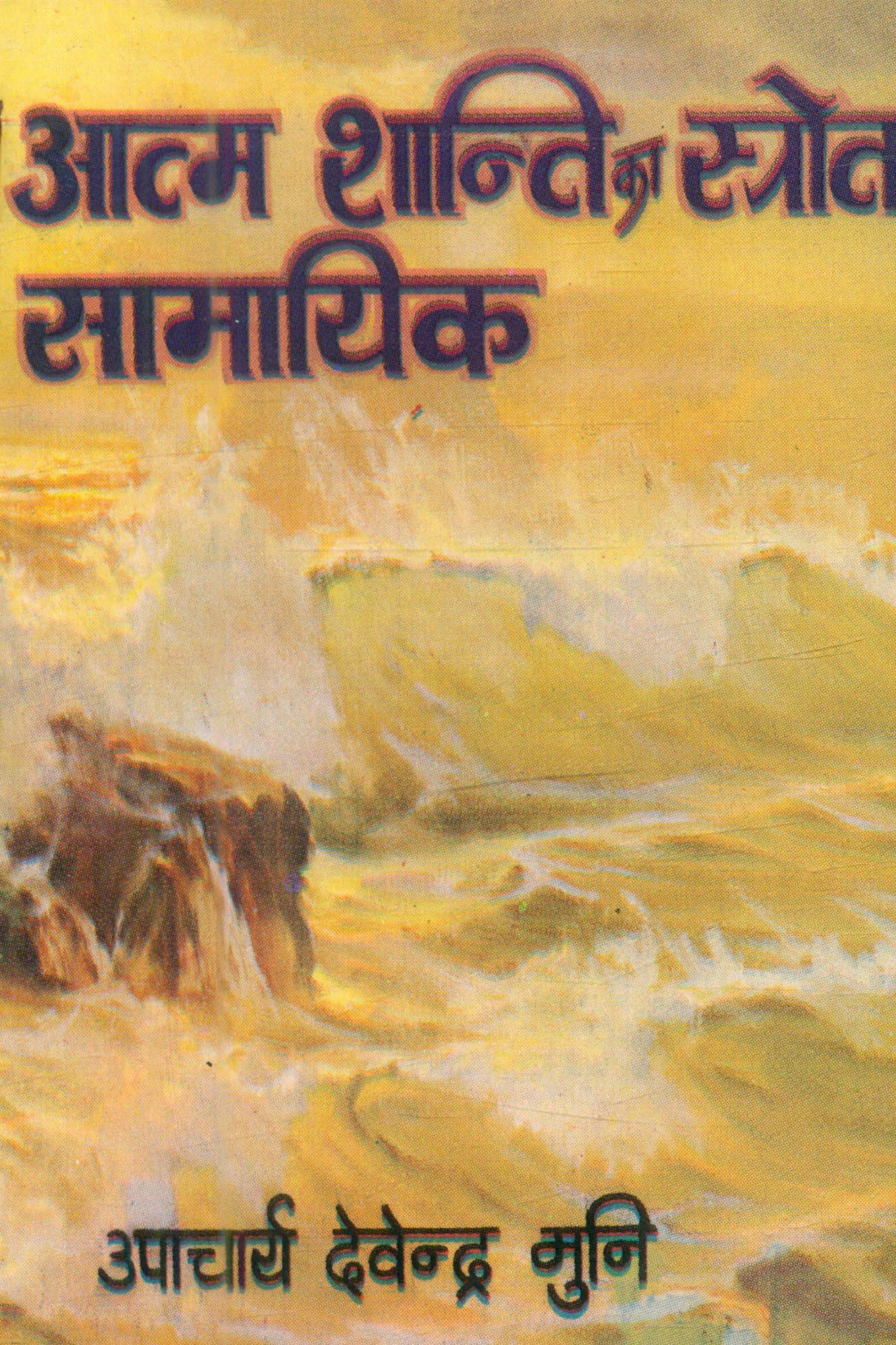

उपाचार्य देवेन्द्र मुनि

श्री नमस्कार महामंत्र

नमो अरिहंताणं,

नमो सिध्दाणं,

नमो आयरियाणं,

नमो उवज्झायाणं,

नमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंचनमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम्॥

आत्म-शान्ति का स्रोत

सामायिक

उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल,
उदयपुर—३१३००१

* ***अर्थ सौजन्य :***

परम गुरुभक्त मांगीलाल जी,
खूबीलाल जी, अमृत लाल जी,
केवलचन्दजी, भरत कुमारजी सोलंकी,
पूना (महा.)

* ***मुद्रक :***

संजय सुराना के लिए
कामधेनु प्रिंटर्स एंड पब्लिसर्स
अवागढ़ हाउस, आगरा—२८२००२.

* वि. सं. २०४७, चैत्र, महावीर जयन्ती
ईस्वी सन् १९९० अप्रैल

* ***मूल्य :***

लागत मात्र दो रुपया पचास पैसा

प्राथमिक

मनुष्य स्वभावतः शान्तिप्रिय है । शान्ति चाहता है, मन की, तन की, परिवार की । हर प्रकार से वह शान्ति और सुख की कामना करता है, परन्तु व्यवहार में वह आज भी अशान्ति और कष्ट से घिरा हुआ है । शान्ति की खोज में वह अशान्ति के दलदल में फंस जाता है । कारण एक ही है कि जिन साधनों से वह शान्ति प्राप्त करना चाहता है, वे साधन, धन, पद, सत्ता आदि स्वयं अशान्ति के ही स्रोत हैं । अशान्ति के साधनों से शान्ति दुर्लभ ही नहीं, असंभव है ।

शान्ति आत्मा की एक स्थिति है, मन की एक वृत्ति है । आत्मा के भीतर ही शान्ति

और सुख का उत्स है, अतः उसे पाने के लिए आत्मा को, आत्मा में ही रमण करना होगा। आत्म-रमण की प्रक्रिया है—सामायिक ।

सामायिक से व्यावहारिक जीवन में भी शान्ति, प्रसन्नता और प्रफुल्लता का संचार होता है, आध्यात्मिक जीवन में तो वह परम शान्ति का स्रोत ही है ।

मैंने संक्षेप में परन्तु अपनी स्वतंत्र नई दृष्टि से सामायिक के व्यावहारिक तथा आत्मिक लाभों पर चिन्तन किया है । आशा है, पाठकों को रुचिकर लगेगा ।

उपाचार्य देवेन्द्र मुनि

आत्म—शान्ति का स्रोत : सामायिक

सामायिक है—समत्व में अवस्थिति । समत्व से अभिप्राय है, चित्त की उस अवस्था का, जिसमें राग-द्वेष, ईर्ष्या-द्रोह आदि और विषय तथा विकारी वृत्तियों को उद्वेलित/उत्तेजित करने वाले भावों का अभाव हो ।

बड़ा चंचल है यह मन । साम्य स्थिति में स्थिर रहता ही नहीं । कभी राग की रागिनी में लिप्त हो जाता है तो दूसरे ही क्षण द्वेष के दावानल में दहकने लगता है; कभी क्रोधभरी फुंकारें मारता है तो कभी मान के हाथी पर सवार हो जाता है, कभी ईर्ष्या सर्पिणी के डंक से आहत हो जाता है तो कभी घृणा और नफरत की गंदगी से सड़ने लगता है ।

इस चंचल मन को स्थिर करना, साम्यावस्था में लाना और समत्व की भावना

में लीन करने की अद्‌भुत क्रिया का नाम है—सामायिक ।

सामायिक शब्द ही संपूर्ण भाव का वाचक

'सामायिक' एक साधना है, जीवन पद्धति है, अकुशल मन को कुशल बनाने की कला है और है समत्व भाव का संपूर्ण प्रयोग । मध्यस्थता की भावना को परिपुष्टि देता है, यह ।

सामायिक शब्द में ही यह सब भाव अन्तर्निहित हैं । सामायिक शब्द की व्युत्पत्ति तीन शब्दों से मिलकर हुई है—सम्+आय+इक । सम् का अभिप्राय है आत्मा की तथा चित्तवृत्तियों की वह दशा, जहाँ राग-द्वेष आदि विकारी भावों का अभाव हो । आय का अभिप्राय है—लाभ;

यानी समभावों का लाभ—प्राप्ति और इक से अभिप्राय है—वह क्रिया जिससे समभाव का लाभ हो, समत्व की संप्राप्ति और उपलब्धि हो ।

शास्त्रीय दृष्टि से सामायिक, समभाव-प्राप्ति का अनुष्ठान है । ऐसी क्रिया है जिसके प्रभाव से आत्मा और मन के भावों तथा चित्त की वृत्तियों की साम्यत्व में अवस्थिति होती है ।

सामायिक है—हिंसा, असत्य, चोरी, चुगली आदि पापपूर्ण अनैतिक वृत्तियों से अलग रहना । मन से किसी भी प्रकार का अशुभ चिन्तन न करना; किसी को पीड़ाकारी, मर्मभेदी वचन न बोलना और शरीर से भी ऐसी कोई क्रिया न करना जो पापकारी व पर-पीड़ाकारी हो ।

एक बार मैंने सुना, एक व्यक्ति को लू

लग गई जिससे समूचे शरीर में दाह सी लगने लगी, जैसे वह आग में जल रहा हो, वह तड़फ रहा था, बेचैन हो रहा था, हाय-हाय कर रहा था, कोई उसे गुलाब का शीतल शर्बत पिलाता, कोई बादाम की ठंडाई, परन्तु उसे पलभर का चैन नहीं, बड़ी विषम स्थिति थी उसकी, भीतर की जलन, छाती की दाह उसे जला रही थी, उसकी हालत देखकर सभी चिन्तित थे । उसी समय वैद्यराज आये, नाड़ी देखी और कहा— इसे लू लग गई है जब तक लू नहीं उतरेगी, ये ठंडे शीतल मीठे पेय सब व्यर्थ हैं । भीतर में बेचैनी है, तो ऊपर की ठंडाई कुछ भी चैन नहीं देगी । अनुभवी वैद्यराज ने उपचार किया, लू उतारी । उसकी भीतरी दाह शान्त हो गई तो उसे चैन भी पड़ी ।

मानव का मन—आज अशान्त है, हजारों प्रकार की चिन्ताएं, टेन्शन, तनाव,

उलझनें उसके मन में जलन पैदा कर रहे हैं । चिन्ताओं की दाह या ज्वाला सी लगी है उसके भीतर । क्रोध, द्वेष, भय और लालच की चिनगारियाँ सी चुभ रही हैं उसके मन में । कहीं ठंडी हवा में बैठें, कूलर के सामने बैठे या वातानुकूलित कमरे में बैठे—परन्तु उसे तो क्षणभर भी चैन नहीं है । चैन कहाँ से, कैसे मिलेगी ? जब भीतर में आग लगी है तो बाहरी ठंडक क्या लाभ करेगी ? सामायिक—कुशल अनुभवी वैद्य की वह चिकित्सा है जो उसके भीतर की ज्वाला को शान्त करती हैं, मन की आग को बुझाकर उसे शान्ति और शीतलता का अनुभव कराती है ।

चूल्हे पर रखा बर्तन का पानी तब तक उबलता ही रहेगा, जब तक नीचे आग जल रही है, इसी प्रकार जब तक मानसिक

आवेग—क्रोध आदि की अग्नि बुझेगी नहीं, तब तक शान्ति कैसे प्राप्त होगी ? सामायिक—मानसिक आवेग-उद्वेग को शान्त करने वाली साधना है ।

संक्षेप में अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति ही सामायिक है । इस प्रकार 'सामायिक' शब्द ही अपने सम्पूर्ण अर्थ का, अपनी सम्पूर्ण क्रिया का और उससे होने वाली फलश्रुति का बोध करा देता है कि 'सम' भावों की अनुभूति जिससे हो, समभावों की स्थिति जिसमें हो वह है सामायिक ।

समत्व : जीवन जीने की कला

यह सर्वमान्य तथ्य है कि प्रत्येक प्राणी की आन्तरिक इच्छा समता में ही जीने की होती है, विषमता कोई नहीं चाहता । लेकिन संसार और सांसारिकजनों की स्थिति

ही ऐसी होती है कि किसी न किसी रूप में विषमता उनके जीवन में प्रवेश कर ही जाती है।

कौन चाहता है—दुःखमय परिस्थितियों को, आपत्ति-विपत्ति को, अनचाहे संबंधों को और उनके कारण उत्पन्न हुए क्लेशों-संघर्षों को ?

लेकिन विवशता यह है कि मानव को इन सबसे दो-चार होना ही पड़ता है, विपरीत स्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं और उन्हें सुलझाने के लिए उसे आगे आना ही पड़ता है। किन्तु कठोर यथार्थ यह है कि सुलझाने के प्रयास में वह और भी अधिक उलझ जाता है, उसका जीवन अनेक उलझनों से भर उठता है। कई प्रकार के संघर्ष उसके जीवन को चारों तरफ से घेर लेते हैं।

पश्चिमी जगत में कहा जाता है—

Conflict is life.

जीवन ही संघर्षमय है ।

भारतीय चिन्तन कहता है—जीवन संघर्षमय भले ही हो, किन्तु जीवन का लक्ष्य, संघर्ष नहीं शान्ति है । इस जीवन में संघर्ष करने पड़ते ही हैं परन्तु शान्ति के लिए । जिस चन्दन के अत्यधिक घर्षण से आग पैदा हो सकती है, उस चन्दन के लेप से शान्ति भी मिल जाती है । जिस कीचड़ से कपड़े गन्दे होते हैं, उसी कीचड़ में कमल भी पैदा होते हैं । इसी प्रकार हम इस जीवन को संघर्षमय नहीं, शान्तिमय बनाना चाहते हैं, तो विकारों से संघर्ष कर शान्ति के द्वार तक पहुंच सकते हैं । इसी शान्तिद्वार तक पहुँचने की प्रक्रिया है—सामायिक ।

संघर्ष का कारण है विषमता । यद्यपि संसार भर में मानव समाज की स्थिति ही ऐसी है कि उसमें ऊँच, नीच, उच्च वर्ग, निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग आदि अनेक श्रेणियाँ हैं । इनमें अपने-अपने हितों के लिए संघर्ष चलता ही रहता है ।

फिर भी जो व्यक्ति इन परिस्थितियों में मानसिक सन्तुलन स्थिर रख सकेगा, उसका जीवन अशान्त नहीं बनेगा । वह सुखी रहेगा।

सुखी जीवन की कला है—समत्व । समता-साधक के समक्ष भी विपरीत परिस्थितियाँ आती हैं; लेकिन वह अपना मानसिक सन्तुलन नहीं खोता, आवेशों के प्रवाह में नहीं बहता, शांत और स्थिर चित्त से उन परिस्थितियों का समाधान खोजता है और बहुत अंशों में सफल भी होता है ।

जीवन एक साफ-सुथरा सपाट राज-मार्ग नहीं है । इसमें अनेक रोड़े हैं; अवरोध हैं । कभी खुशी तो कभी गम । सुख-दुख, आशा-निराशा, हर्ष-शोक का संगम है यह जीवन ।

जीवन के इस त्रिवेणी संगम में—सुखों में अत्यधिक हर्षित न होना और दुःखों की मार से प्रताड़ित न होना । सुख और दुःख में सम बने रहना, यहीसफल जीवन की कला है, जो समत्व की साधना से प्राप्त होती है ।

समत्व जब हृदय में, मन-मस्तिष्क में प्रतिष्ठित हो जाता है तो दुःखों की पीड़ा, अभावों का कष्ट, पारिवारिक कलह-क्लेश तथा राजनीतिक उथल-पुथल व्यक्ति को अधिक प्रभावित नहीं कर पाते । उसमें एक माध्यस्थ्य भाव आ जाता है ।

इस माध्यस्थ्य भाव के आधार पर भी

वह अपनी जीवन-नौका को चलाता है और गरजते-लरजते, उछालें मारते अनेक हिंसक क्रूर घड़ियालों से भरे सागर को पार कर जाता है।

सुख-दुःख में तितिक्षा

तितिक्षा का अभिप्राय है—सहिष्णुता, सहनशीलता। कष्ट और दुःखों के क्षणों में तितिक्षा भाव बनाये रखना, बड़े ही धैर्य और संयम का काम है। धैर्यशाली व्यक्ति ही ऐसे क्षणों में सफल हो पाते हैं; अधिकांश व्यक्ति तो विचलित हो जाते हैं।

दीर्घ-साधना और धैर्य से सधती है—तितिक्षा। इसके लिए लम्बा अभ्यास आवश्यक है। तितिक्षा के लिए दृढ़ मनोबल जरूरी होता है। मनोबल जितना दृढ़ होगा, तितिक्षा भी उतनी ही उच्चकोटि की होगी। तितिक्षा जीवन-व्यवहार में आवश्यक है।

सुख क्या है ? मन के अनुकूल अनुभूति और दुख है वह अनुभूति जो चित्त के प्रतिकूल होती है । मन को अच्छी नहीं लगती अथवा मन-मस्तिष्क में—हृदय में वितृष्णा का, घृणा का भाव उदय होता है । मनुष्य इस दुःखमय अनुभूति को दूर हटाना चाहता है अथवा स्वयं उससे दूर होने का प्रयत्न करता है ।

लेकिन सभी स्थितियों में उसके प्रयास सफल नहीं हो पाते तब उसकी दुःखानुभूति अन्तर् की पीड़ा के रूप में उभार पाने लगती है । ऐसी पीड़ा की स्थिति में मन-मस्तिष्क क्षुभित होने लगते हैं और अधिकांशतया वे दुःखमुक्ति के प्रयास जो ऐसी मानसिक स्थिति में किये जाते हैं, उनकी सफलता और भी अधिक संदिग्ध हो जाती है ।

इस पीड़ामय स्थिति से उबरने का

एकमात्र उपाय तितिक्षा है । तितिक्षा, इस प्रकार का कवच निर्मित करती है; जिसको भेद कर सुख की अत्यधिक हर्षयुक्त और दुख की घनीभूत पीड़ा की गहरी अनुभूतियाँ मन-मस्तिष्क को उद्वेलित नहीं कर पातीं । वह कष्टप्रद स्थितियों में भी अपनी बुद्धि को स्थिर रख सकता है और यह सर्वविदित तथ्य है कि स्थिरबुद्धि सफलता की सर्वप्रथम आवश्यकता है ।

तितिक्षा का कवच जीवन—संग्राम में हमारी रक्षा करता है, बाहरी आघातों से, प्रहारों से, विषमता के विष-बुझे बाणों से । तितिक्षा धारण कर हम प्रलयंकारी तूफानों में भी स्थिरबुद्धि बने रह सकते हैं ।

भूत के भार से मुक्ति

मानव के जीवन की भूतकालीन स्मृतियाँ भूत की तरह मस्तिष्क में जमी

रहता है । मनोवैज्ञानिक शब्दावली में 'मानव अपनी भूतकालीन स्मृतियों का भार ढोता रहता है ।'

ये स्मृतियाँ सुखपूर्ण क्षणों से भी सम्बन्धित होती हैं और दुःखद क्षणों से भी । जब भी स्मृति पटल पर वे दुःखपूर्ण अप्रिय अनचाहे क्षण चित्रपटल के समान मस्तिष्क के समक्ष आते हैं तो मानव उदास हो जाता है, हताशा उस पर सवार हो जाती है, वह अपने आपको मायूस अनुभव करने लगता है; वर्तमान का सुख भी अतीत की अप्रिय स्मृतियों में लुप्त हो जाता है ।

उस समय मानव को आवश्यकता होती है—समत्व की । समभाव की । अनासक्ति की । मानव को उस समय उन स्मृतियों से लगाव का प्रयत्न छोड़ देना चाहिए । वह उन स्मृतियों के प्रति माध्यस्थ्य भाव रखे,

अपने को उनसे जोड़े नहीं । तटस्थ दर्शक के समान बना रहे । तो वे स्मृतियाँ दुःखदायी नहीं होतीं ।

यदि वह ऐसा कर सका तो अतीत की स्मृतियों के भार से मुक्त हो सकता है ।

समत्व एवं हृदयगत साम्यावस्था का अभिप्राय है तटस्थ बनना, चिन्ता को चित्त तक न आने देना । सामायिक या शुभ ध्यान से चित्त को भविष्य की गलियों में भटकने से रोका जा सकता है । चिन्ता के चक्र से छुटकारा दिलाया जा सकता है—समभाव साधना से ।

भविष्य की चिन्ताओं से मुक्ति

मानव-मन की शान्ति में विक्षेप डालने वाला सर्वाधिक प्रभावकारी तत्व है चिन्ता । यह चिन्ता विशेष रूप से भविष्य के प्रति होती है । इसका कारण यह है कि मनुष्य

अपने भविष्य अथवा भावी को स्पष्ट रूप से न तो देख सकता है, न जान पाता है। इसी कारण भविष्य के प्रति उसके मन में अनेक प्रकार की आशंका-कुशंकाएँ उपजती रहती हैं, वह उनसे घिरा रहता है।

आशंकाएँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं—अर्थ (धन) सम्बन्धी, धन के उपार्जन सम्बन्धी और यदि धन का उपार्जन अधिक हो गया है तो उसके रक्षण सम्बन्धी—कहीं कोई चोर चुरा न ले जाये, किसी प्रकार यह धन नष्ट न हो जाय।

व्यापार संबंधी, परिवार संबंधी—पुत्री का विवाह कैसे होगा, पुत्र की संगति बिगड़ न जाय, वह मेरे व्यापार को संभाल भी सकेगा या नहीं ? आदि। यहाँ तक कि अपने शरीर संबंधी चिन्ता भी मनुष्य को सताती रहती है—कहीं मैं बीमार न पड़

जाऊँ ? कोई एक्सीडैंट न हो जाय आदि अनेक प्रकार की चिन्ताएँ हैं ।

हमारे एक परिचित सज्जन थे । दुपहर का भोजन करके आराम के लिए लेटे थे । जब लेटे तब तक प्रसन्न थे, सब से बतियाते थे, हंसी मजाक भी चल रही थी । लेटने के लिए बिस्तर पर गये, फोन की घंटी बजी टन....टन... दुकान का फोन था । मोहन बड़ा लड़का बम्बई गया सो अब तक लौटा नहीं, साथ में दो लाख कैश भी था । सोना भी था.....बस सेठजी फोन सुनते ही उदास हो गये, "क्या हुआ, लड़का अब तक क्यों नहीं आया, बम्बई में कुछ हो तो नहीं गया ? होटल में ठहरता है, होटल में कुछ दिन पहले ही एक व्यक्ति को लूटकर उसकी लाश समुद्र में फैंक दी थी ।

चौपाटी पर अमुक का कार-एक्सीडेन्ट हो गया था । शरीर के चिथड़े-चिथड़े उड़ गये । जवान लड़का है, अभी शादी हुई है.....जवान बहू घर में.....बुढापे का सहारा".....सैकड़ों बुरे विकल्प जहरीले डंक से चुभने लगे ।

पाँच मिनट में ही सेठजी हाल-बेहाल हो गये, पसीना-पसीना आने लगा, जी घबराने लगा, ओय.....की आवाज की और धम से पलंग पर गिर पड़े, घर वाले दौड़े—क्या हुआ.....? नौकर दौड़ा आया, सेठानी, बच्चे घबराये से आये—क्या हुआ..... पानी पिलाया, पंखा चलाया, सेठजी ने दो मिनट बाद आँख खोलीं मेरा मोहन.....

तब तक मोहन टेक्सी से उतरकर घर में आ गया। दौड़कर आया, पिताजी ! क्या

हुआ ? सेठजी ने देखा—मोहन सकुशल आ गया..... धीरे-धीरे सब़ सामान्य हुआ.....

तो भविष्य की चिन्ता ऐसी जहरीली नागिन है कि क्षणभर में प्रसन्न, हंसते हुए मनुष्य को रुला देती है । स्वस्थ को बीमार कर देती है । भावी की आशंकाएँ, अनहोनी, दुश्चिन्ताएँ मनुष्य को डसती रहती हैं।

तथ्य यह है कि इस प्राणी जगत में मानव ही ऐसा प्राणी है जो चिन्ताओं—दुश्चिन्ताओं से आकुल-व्याकुल रहता है । पशु-पक्षी जगत को इस प्रकार की कोई चिन्ता ही नहीं ।

मानव की चिन्ताएँ आधुनिक युग में, इस भागमभाग के युग में अत्यधिक बढ़ गई हैं । आज से १००-५० वर्ष पहले जीवन में चिन्ताएँ अधिक नहीं थीं, सामान्यतया

जीवन शांत था, किन्तु ५० वर्ष से जो अर्थ युग का प्रारम्भ हुआ है, उसने जीवन को अनिश्चयता की स्थिति में डाल दिया है, जीवन की, भविष्य की सुरक्षा, असुरक्षा में बदल गई है । इसी कारण चिन्ताओं में भी अत्यधिक वृद्धि हो गई है ।

स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि मानव के जीवन का प्रत्येक पल चिन्ताओं से घिर गया है ।

तो, आज मानव अपनी इस असह्य चिन्ताग्रस्त स्थिति से त्राण पाना चाहता है, इन दुर्विकल्पों और दुश्चिन्ताओं से मुक्त होना चाहता है । इसके उपाय वह उन पुस्तकों—साहित्य में खोजता है, जो इन्हीं विषयों पर आकर्षक नामों से प्रचारित होती हैं । जब उनसे उसकी चिन्ताएँ नहीं मिटतीं तो ट्रेन्कुलाइजर्स का प्रयोग करने लगता है

और कभी-कभी तो मादक द्रव्यों का उपयोग करके सब कुछ भुला देना चाहता है।

इनमें से पुस्तकों में बताये गये उपाय कुछ उपयोगी सिद्ध होते हैं, किन्तु ट्रेन्कुलाइजर्स और मादक द्रव्य तो और भी हानिकारक बन जाते हैं। कुछ समय तक नींद आ जाती है और मदहोशी की दशा रहती है। फिर वही चिन्ताचक्र शुरू हो जाता है।

वास्तव में इनमें से कोई भी ऐसा उपाय नहीं है जो स्थायी रूप से मानव को चिन्तामुक्त कर सके।

चिन्तामुक्ति का एकमात्र उपाय है—अपनी रुचियों-प्रवृत्तियों में बदलाव लाना, इच्छाओं-आकांक्षाओं को सीमित करना, समृद्धि की ओर न ललचाना, भाग्य या कर्म

पर विश्वास करना । आदि ।

और यह सब तब होता है जब मानव समत्व धारण करे । जो घटित हो रहा है उसे परिस्थिति और भाग्य का खेल समझे । उसमें उद्विग्न और चिन्तित न हो । मन-मस्तिष्क और हृदय की ऐसी स्थिति बना ले—जैसा कि एक उर्दू शायर ने कहा है—

मैं जिंदगी का साथ
निभाता चला गया ।
गम और फिकर को
फिजां में उड़ाता चला गया ।।

इस तथ्य को मन में भली भाँति स्थिर कर लेना ही उपयोगी होगा कि जो होना है, वह तो अवश्य ही होगा, उसके लिए चिन्ता करने से क्या लाभ ?

इसके साथ यह भी तो संभव है कि

भविष्य में जिन आशंका-कुशंकाओं को लेकर विपरीत परिस्थितियों की संभावना से मानव वर्तमान में चिन्तित हो रहा है, वे घटें ही नहीं, अथवा अनुकूल परिस्थितियाँ बन जायँ और जिस दुःख की कल्पना की जा रही है, वह सुख में परिणत हो जाय ।

इन सब बातों पर विचार करके भविष्य की चिन्ता छोड़कर वर्तमान में जीना सीखें। वर्तमान के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करें । समत्व बुद्धि से वर्तमान को सफल करें । विश्वास रखें, भविष्य अपने आप सुखद हो जायेगा क्योंकि वर्तमान की प्रवृत्तियों-क्रिया-कलापों से ही तो भविष्य का निर्माण होता है ।

तनाव रहित वृत्ति

आज के भौतिकवादी युग ने मानव के लिए सुख-सुविधा के असीमित साधन

आविष्कृत किये हैं तो साथ ही उसे तनाव की सौगात भी सौंपी है । चाँद, तारों तक पहुँचने वाला मानव तनावों में जी रहा है । समृद्धि के साथ अशांति, असंतोष और तनाव । आज भौतिक समृद्धि के सागर में बैठा मानव उस समृद्धि से सुख की एक बूँद के लिए भी प्यासा है, तरसता है । यह— ऐसी ही स्थिति है, जैसी जल बिच मीन पियासी ।

बात अटपटी है लेकिन है सत्य । मनुष्य ने ज्यों-ज्यों सुख-शांति के साधन खोजे त्यों-त्यों तनाव का तमाच्छादित कुहरा अधिकाधिक गहराता ही गया, सघन होता चला गया ।

ऐसा क्यों हुआ ? मूल में ही भूल हो गई । शांति मानव के हृदय में है, मानसिक वृत्तियों और संतोष तथा समता में है, जबकि

वह उसे बाहरी परिवेश, भौतिक चकाचौंध में खोज रहा है; ठीक उसी तरह जैसे मृग कस्तूरी की सुगन्ध से आकर्षित होकर उसे पाने के लिए बावला सा बना इधर-उधर भटकता रहता है, भोला हिरन नहीं जानता कि कस्तूरी तो मेरी नाभि में ही है। इसी तरह मानव भी भूल गया है कि शांति, सुख तो उसके अन्तर् में ही हैं; बाहर कभी नहीं मिल सकते; फिर भी मृगतृष्णा के वशीभूत होकर मृगमरीचिका की ओर दौड़ रहा है।

एक लघु रूपक है—

ईश्वर ने जब मनुष्य को उत्पन्न करके सृष्टि में भेजा तो उसके पाँवों में गति भर दी, हाथों में क्रियाशीलता, मस्तिष्क में विचारशक्ति तथा हृदय में सुख, शांति, संतोष और कोमल करुणामयी भावनाएं। हृदय कोमल था इसलिए इसे छाती के नीचे

सुरक्षित कर दिया, छिपा दिया ।

मनुष्य आज तक उसी सुख-शांति के लिए भटक रहा है; चिन्तन भी करता है, हाथ-पैरों से कर्मठता और गतिशीलता भी अपनाता है, भटकता है इधर-उधर शांति की खोज में; लेकिन हृदय के भीतर छिपी शांति उसके दृष्टिपथ में आती ही नहीं; क्योंकि उसकी सभी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी हैं; शान्ति उपलब्ध हो तो कैसे ?

और जब शांति पाने के उसके सभी प्रयास विफल हो जाते हैं तो उसका मन-मस्तिष्क विभिन्न प्रकार के तनावों से भर जाता है ।

ये तनाव व्यक्तिगत भी होते हैं, पारिवारिक भी और वातावरणजन्य भी । तथा आर्थिक, व्यापारिक, जातीय, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय

समस्याएँ भी तनावों में वृद्धि करती हैं ।

व्यक्तिगत और पारिवारिक तनाव का प्रमुख कारण है, अपने से अधिक समृद्ध व्यक्ति की ओर देखना, उन जैसी समृद्धि प्राप्त करने की लालसा तथा प्रतिस्पर्द्धा और वह लालसा प्रतिस्पर्द्धा पूरी न होने पर तनाव की स्थिति बन जाती है ।

अतिशय महत्वाकांक्षाएँ भी व्यक्ति के जीवन को तनावों से भर देती हैं । यदि मानव 'सादा जीवन, उच्च विचार' के आदर्श के अनुसार जीवन बिताना भी चाहे तो सामाजिक परिस्थिति ऐसी विषम हैं कि उस व्यक्ति को उचित सम्मान नहीं मिलता । और जब वह देखता है कि धन की ही प्रतिष्ठा है, सम्मान है, आदर है तो वह भी धनप्राप्ति की दौड़ में शामिल हो जाता है । पुत्री के लिए योग्य वर प्राप्ति में आज धन प्रमुख आवश्यकता बन गया है ।

और यह भी व्यक्ति के तनाव का कारण बन गया है ।

आज के युग में अनेक कारण हैं—तनाव के; और अधिकांश मानव तनाव-मुक्ति की इच्छा रखते हुए भी विवश होकर तनावों से प्रताड़ित जीवन जी रहे हैं ।

इन विविध प्रकार के तनावों से मुक्ति का स्थायी उपाय है—स्वयं अपनी शक्ति को—आत्मशक्ति को पहचानना, उस पर दृढ़ विश्वास करना । इस आत्मविश्वास के प्रभाव से प्रतिकूल एवं विपरीत स्थितियों के कारण उभरे तनावों को निःशेष करने की क्षमता प्राप्त होगी और परिणामस्वरूप समता (समत्वभाव) हृदय में स्थापित होगी तथा तनावों से मुक्ति मिल जायेगी ।

समत्व, आत्मिक-परिणामों (भावों) की ऐसी तीक्ष्णधारा है जो तनावों के प्रभावों को

छिन्न-भिन्न कर देती है, तनावों, चिन्ताओं के सागर के मध्य एक ऐसा टापू है, जहाँ तक उद्विग्नताओं और निराशाओं की तूफानी लहरें नहीं पहुँच पातीं और मानव-मस्तिष्क स्थिर रहता है, शांति का अनुभव करता है ।

गीता का निष्काम कर्मयोग

चिन्ताओं, तनावों से मुक्ति के लिए गीता ने एक मार्ग प्रस्तुत किया—निष्काम कर्मयोग । गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेर्तुभू र्मातेसंगोऽस्त्वकर्मणि ॥

-गीता २/४७

—अर्थात्—हे अर्जुन ! कर्म करने में तेरा अधिकार है, फल प्राप्ति में नहीं । अमुक कर्म का अमुक फल मिले ऐसी इच्छा अपने

हृदय में मत रख और कर्म न करने का भी आग्रह करना उचित नहीं है । इसका भाव यही है कि फल की इच्छा न रखकर कर्म किया जाना चाहिए ।

जब इच्छा ही न होगी तो फल प्राप्त हो अथवा न हो; उसमें सुख अथवा दुःख की अनुभूति भी न होगी । कर्म के साथ आशा, इच्छा, महत्वाकांक्षा आदि का संबंध टूट जाने पर मानव को तनाव भी नहीं होगा, वह सुख-दुःख की भावनाओं से अतीत हो जायेगा; दुःख उसे सालेगा नहीं और सुख फुलायेगा नहीं ।

इस प्रकार स्थितप्रज्ञ जैसी स्थिति निर्मित हो जायेगी जो सभी प्रकार की आसक्ति से रहित होती है ।

गीता का यह निष्काम कर्मयोग सिद्धान्ततः उचित है, लेकिन सबसे बड़ी

बाधा है, व्यवहार्यता की । व्यवहार में इसका प्रयोग अत्यन्त कठिन है । सामान्य मनुष्य तो क्या बड़े-बड़े साधक भी इस सिद्धान्त पर पूरी तरह अमल नहीं कर पाते; फल की आशा उनमें भी रहती ही है और यदि उचित फल की प्राप्ति न हो तो वे भी निराश-उदास हो जाते हैं ।

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है । वह योजनाबद्ध कार्य करता है । कोई भी कार्य शुरू करने से पहले वह उसके फल पर विचार कर लेता है । पिता अपने पुत्र को स्कूल भेजने से पहले ही उसके विद्या प्राप्त करके, डिग्री लेने, डॉक्टर, वकील, इन्जीनियर बनने की आशा अवश्य करता है । व्यापारी व्यापार करने से पहले लाभ की भी नियोजना करता है, तभी वह पूँजी लगाता है, श्रम करता है, अपनी बुद्धि और

कुशलता का प्रयोग करता है । यदि उचित लाभ न मिले तो उस व्यापार को बन्द करने में क्षण भर का भी विलम्ब नहीं करता तुरन्त दूसरा व्यापार शुरू कर देता है ।

लाभ अथवा प्राप्ति की आशा से कार्य में प्रवृत्त होना मानव का स्वभाव है । फिर आशा ही ऐसी प्रेरणा है जो मानव को कर्म में प्रवृत्त करती है । आशा टूटने पर तो मनुष्य हताश-निराश हो जाता है, उसका जीवन ही मरणतुल्य हो जाता है । वह किसी भी प्रकार का कार्य करना ही नहीं चाहता, उसका उत्साह मर जाता है ।

फिर भी कर्म के साथ फलेच्छा की असंगता की दृष्टि से गीता के निष्काम कर्मयोग को उचित कहा जा सकता है, यह तनावों, दुःखों, पीड़ाओं से मानव को मुक्ति दिला सकता है, शर्त यही है कि मनुष्य इसे

व्यवहार में ला सके । यदि निष्काम कर्म की वृत्ति मानव अपना सके तो संसार के द्वन्द्वों से वह काफी हद तक अप्रभावित रह सकता है ।

भ. महावीर का समता योग

भगवान महावीर ने अमूर्च्छाभाव की प्रेरणा दी है । इसी का नाम है—समभाव—"सम मणइ जो तस्स सामाइयं होई"....सभी स्थितियों में जो सम-मन रहता है उसको ही सामायिक होती है । इसको ही समत्व योग कहा है ।

भगवान महावीर द्वारा बताये गये समता योग का अभिप्राय है—राग-द्वेष की, क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायों की अल्पता तथा द्वन्द्वातीत होकर आत्मस्थ होना ।

यह सत्य है कि संसारावस्था में राग-द्वेष

का सर्वथा अभाव नहीं हो पाता; लेकिन यदि व्यक्ति चाहे और प्रयास करे तो उन्हें इतना अल्प कर सकता है, उनकी शक्ति को इतना क्षीण कर सकता है कि वे इतने निष्प्रभावी हो जायें कि मानसिक स्थिरता तथा शांति को भंग न कर सकें।

एक व्यावहारिक उदाहरण है—

एक मिल मालिक है। सैकड़ों मजदूर, क्लर्क आदि का स्टाफ काम करता है, सभी के अलग-अलग स्वभाव हैं, रुचियाँ हैं, प्रवृत्तियाँ हैं, यूनियन भी बना ली है, नित नई माँगें करते हैं। वह श्रमिक समस्या को भी सुलझाता है। कच्चे माल का भी प्रबन्ध करता है, बाजार के कम्पटीशन को भी भुगतता है, सरकारी अधिकारी/कर्मचारियों सेभी सुलझता है।

ये सभी समस्याएँ उसके सामने आती

हैं; फिर भी उसका मस्तिष्क उद्विग्न नहीं होता, तनाव नहीं आता । यदि मस्तिष्क उत्तेजित हो जाय, बाजार की तेजी-मन्दी से उद्विग्न हो जाय तो किसी समस्या को सुलझा ही न सके अपितु और भी अधिक उलझ जाय ।

तथ्य यह है कि जीवन संघर्षपूर्ण है, कदम-कदम पर समस्याएँ हैं । उन समस्याओं को शांत और स्थिर मस्तिष्क से चिन्तन करके ही सुलझाया जा सकता है । और यह स्थिरता समत्व से ही प्राप्त हो पाती है ।

एक व्यापारी अपने किसी कर्मचारी को उसकी किसी भूल अथवा काम में लापरवाही या अनुशासनहीनता के लिए डाँट रहा है; उसी क्षण कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति आ जाय तो उससे मुस्कराकर शांत

दिमाग से वह बातें भी करने लगता है । इस प्रकार की घटनाएँ उस व्यापारी के राग-द्वेष की अल्पता तथा मन-मस्तिष्क की स्थिरता का नमूना कही जा सकती हैं ।

इस तरह की मानसिक शांति और स्थिरता भ. महावीर द्वारा बताई गई समता की साधना से प्राप्त की जा सकती है । ऐसी समता जो द्वन्द्वातीत हो, तनाव, चिन्ता, आशंका-कुशंका, उद्विग्नता, उत्तेजना आदि का जिसमें प्रवेश न हो सके ।

अब तक हमने समत्व के व्यावहारिक रूप का विवेचन किया है । यह बताया है कि सुख-दुःख में तितिक्षा, भूत-भविष्य के भार व चिन्ताओं से मुक्ति, तनावों और द्वन्द्वों तथा संघर्ष एवं उलझनों के सुलझाव में मानसिक स्थिरता तथा शांति । ये सभी समत्व के जीवन-व्यवहार में प्रयोग से उपलब्ध किये जा सकते हैं ।

अब इस पर भी चिन्तन अपेक्षित है कि समत्व की प्राप्ति कैसे होती है ? उसकी विधि क्या है ? साधना का क्रम किस प्रकार है ?

समत्व की साधना

समत्व की साधना-प्रक्रिया है— सामायिक। यह जैन धर्म का विशिष्ट शब्द है। इस साधना में मन-मस्तिष्क की वृत्तियों का मार्गान्तरीकरण किया जाता है। जो वृत्तियाँ बहिर्मुखी हो रही हैं, उन्हें अन्तर्मुखी बनाकर अपनी आत्मा में स्थित किया जाता है।

समस्त पापकारी प्रवृत्तियों के त्याग का नाम है सामायिक। कषायों, आवेगों, उत्तेजनाओं के निरसन को सामायिक कहा गया है। मन की चंचलता को सामायिक स्थिरता प्रदान करती है, और साधक शांति

के सरोवर में डूब जाता है ।

सामायिक जैन साधना का हार्द है, श्रेष्ठ आचरण है और ऐसा योग है जो मन-मस्तिष्क की विषमता को समता में—समत्व भाव में परिवर्तित कर देता है । इससे कषायों का उपशमन होता है, कष्ट सहिष्णुता-सहनशीलता की क्षमता में वृद्धि होती है, सहजता आती है और दुःखों, अभावों, विपरीत-विषम परिस्थितियों के प्रति ऐसी प्रतिरोधक शक्ति विकसित हो जाती है कि सामायिक साधक इन सबसे विचलित नहीं होता, अप्रभावित रहता है ।

सामायिक के तीन अर्थ

शास्त्रों में सामायिक के विभिन्न अपेक्षाओं से कई प्रकार बताये गये हैं । शब्दार्थ की दृष्टि से इसके तीन भेद हैं । प्रथम भेद हैं—

(१) साम—साम का अभिप्राय है सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रूप समता रखना । मैत्री, अहिंसा, करुणा, अभय, मृदुता, क्षमा आदि रूप परिणाम अथवा भाव जब आत्मा में स्थान पाते हैं तो आत्मा में निर्मलता एवं शुद्धि विकसित होती है । इसका परिणाम यह होता है कि साधक को अपूर्व मधुरता का अनुभव होता है । इसी कारण इस सामायिक को मधुर परिणामरूप माना गया है ।

अर्थात् सामायिक का प्रथम रूप है—मानसिक मृदुता और मधुरता । भावों का परिवर्तन और परिष्करण करना—सामायिक है ।

वस्तुतः द्वेष और उसके परिवारी क्रोध, मान, ईर्ष्या आदि कटु परिणाम वाले, कटु स्वभावी और कटु रस वाले हैं । इन भावों

का अभाव होने से तथा मैत्री, अभय, मृदुता आदि कोमल परिणामों के उत्कर्ष के प्रभावस्वरूप आत्म-भावों में माधुर्य का समावेश होता है और उसी माधुर्य भाव का रसास्वाद साधक को आता है ।

(२) **सम**—सामायिक का यह भेद समता से सीधा सम्बन्धित है । इसे तुल्य परिणाम रूप कहा गया है । तुल्य का अभिप्राय है राग-द्वेष-हीनता । सकारात्मक रूप में मध्यस्थता अथवा तटस्थ रूप आत्म प्रवृत्ति **सम** सामायिक है । ऐसा साधक राग-द्वेष, क्रोध आदि के प्रसंगों पर भी समत्व बनाये रखता है ।

मध्यस्थता का अभिप्राय अपकारी और विपरीत वृत्ति वाले लोगों की भी कल्याण कामना करना है । पक्ष-विपक्ष के बीच स्व-अक्ष—अर्थात् अपने केन्द्र में रहना ।

(३) **सम्म**—इस सामायिक में सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र का एकीकरण—सम्मिलन होता है । सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्-श्रद्धा का एकीकरण अथवा सम्मिलन चारित्रगुण को उत्कर्षता प्रदान करता है, परिणामस्वरूप आत्म-भावों में साधक की स्थिरता बढ़ती है, तन्मयता आती है और उसे अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है । इसी कारण सामायिक के इस **सम्म**-स्वरूप को तन्मय परिणाम रूप बताया गया है ।

आत्मभावों में रमणता—तन्मयता का व्यावहारिक फल संसार की समस्त वस्तुओं, विषयों, लाभों से विरक्ति अथवा उदासीनता के रूप में प्रगट होता है । तब वह स्थिति बनती है कि लाभ, अलाभ, हर्ष-शोक, संयोग-वियोग से व्यक्ति अप्रभावित रहता

है, उसका आकर्षण इन वस्तुओं के प्रति रहता ही नहीं, अथवा इतना क्षीण हो जाता है कि वह द्वन्द्वातीत हो जाता है ।

यही समता-भाव का चरम है, जिसकी ओर भगवान महावीर ने संकेत किया है और यही समत्व सामायिक साधना का ध्येय है । साधक इसी ध्येय को प्राप्त करके समत्वभाव से परिपूर्ण होकर अपनी जीवन यात्रा को सफल करता है ।

सामायिक के चार भेद

दूसरी अपेक्षा से सामायिक के चार भेद बताये गये हैं—

१. दर्शन सामायिक

२. ज्ञान सामायिक

३. देशविरति सामायिक

४. सर्वविरति सामायिक

१. दर्शनसामायिक—इसे सम्यक्त्व सामायिक भी कहा गया है । सम्यक्त्व का अभिप्राय है—सम्यग्दर्शन । दर्शन है दृष्टि की विशुद्धि, सच्ची श्रद्धा—आत्म तत्व के प्रति । अपनी आत्मा, उसके अनन्त गुणों और शक्तियों के प्रति अचल निष्ठा, दृढ़ विश्वास ।

सम्यग्दर्शन—केवल तत्व श्रद्धा या आत्म-प्रतीतिरूप ही नहीं, यह तो एक आध्यात्मिक पक्ष है, इसका एक मनो-वैज्ञानिक रूप भी है—भावों का सरली-करण, शुद्धीकरण । सम्यक्त्व के स्पर्श से भावों में आमूल चूल परिवर्तन आता है । कठोरता कोमलता में, कटुता मधुरता में, क्रूरता-करुणा में और विषमता- समता में बदल जाती है ।

जब तक आत्मा के प्रति निष्ठा और

विश्वास रहता है तब तक वह सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन है; लेकिन जैसे ही सम्यक्त्व के साथ समत्व का सम्मिलन होता है, राग-द्वेष आदि भावों का विसर्जन करके व्यक्ति साम्यभाव में अवस्थित होता है, मधुर कोमल भावों में स्थित होता है, आत्मस्थ होता है, आत्मभाव में रमण करता हैं, मनुष्य की उस समय की आत्मिक वृत्ति दर्शन अथवा सम्यक्त्व सामायिक कहलाती है।

सम्यक्त्व—सम्यग्दर्शन और दर्शन सामायिक में अन्तर इस बात का है कि सम्यग्दर्शन, यदि वह क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन हो तो ६६ सागरोपम तक रह सकता है। इस कालमान में राग-द्वेष-कषाय आदि शुभ-अशुभ वृत्तियों में भी उस व्यक्ति की प्रवृत्ति हो सकती है;

फिर भी सम्यक्त्व की विराधना नहीं होती।

जबकि सम्यक्त्व सामायिक में चित्त की साम्यावस्था अनिवार्य है; यदि मन विषम स्थिति में प्रवर्तित हो गया तो सामायिक की भी अवस्थिति नहीं रह पाती ।

यही कारण है कि उपयोग की अपेक्षा सामायिक की निरन्तरता एक अन्तर्मुहूर्त से कुछ न्यून काल मानी गई है ।

(२) **ज्ञानसामायिक**—ज्ञान बहुत विशद और व्यापक है । इसके अनेक भेद भी हैं—लौकिक, पारलौकिक, व्यावहारिक, अंक-गणितीय, लिपिसंबंधी, भूगोल, खगोल, नक्षत्र सम्बन्धी, भौतिकी-ज्ञान, रसायन-ज्ञान आदि अनेक प्रकार हैं ज्ञान के । लेकिन ज्ञानसामायिक के सन्दर्भ में ज्ञान का अभिप्राय सम्यक्ज्ञान है ।

और सम्यक्ज्ञान है, वस्तुतत्व का यथार्थ

ज्ञान । जिस प्रकार केवली भगवान ने तत्वों का स्वरूप बताया है, उसी प्रकार उन्हें जानना, सत्य को समझना ।

आत्मा भी एक तत्व है, उसका यथार्थ ज्ञान करना; आत्मिक गुणों और शक्तियों को जानना सम्यक्ज्ञान है ।

आत्मज्ञान का अर्थ बहुत व्यापक है, आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों का, आत्मा के अनन्त गुणों का बोध करना, उन गुणों को प्रकट करने का उपाय जानना, यह आत्मज्ञान या सम्यक्ज्ञान है ।

व्यक्ति जब बाह्योन्मुखी ज्ञप्तिक्रिया—ज्ञान की प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी बना लेता है, राग-द्वेष आदि का विवर्जन करके आत्मगुणों के चिन्तन-मनन, स्वाध्याय (अपनी आत्मा का ही अध्ययन) में लीन-तल्लीन कर लेता है, उस स्थिति को ज्ञानसामायिक कहा

गया है । ज्ञान की तल्लीनता स्वात्मभावों में जब तक रहती है, वही कालमान ज्ञान-सामायिक का है ।

ऐसा भी होता है कि शोर, डांस-मच्छर आदि के काटने अथवा अन्य किसी प्रबल निमित्त के कारण ज्ञान की तल्लीनता में विक्षेप भी हो जाता है; किन्तु ज्ञानधारा आत्मिक परिणामों में यदि चलती रहे तो व्यक्ति पुनः सुस्थिर हो जाता है ।

उदाहरणार्थ, किसी डांस-मच्छर ने हाथ-पाँव में काटा, या पीठ में खुजली मची, पीड़ा अथवा खुजलाहट की अनुभूति हुई, हाथ पीठ की ओर गया—खुजलाने के लिए; लेकिन मन में अभी आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि गुणों का चिन्तन-मनन चलता रहा, हल्का सा विक्षेप हुआ फिर तुरन्त हाथ लौट आया । इस स्थिति में चित्त की ज्ञानधारा

खण्डित नहीं हुई, चलती रही तो साथ ही ज्ञानसामायिक भी अविच्छिन्न रही ।

(क) चारित्रसामायिक—शास्त्रों में इसके दो भेद बताये गये हैं—१. सर्वविरति सामायिक और २. देशविरति सामायिक । सर्वविरति सामायिक श्रमणों-साधु-साध्वियों के लिए है और देशविरति सामायिक गृहस्थ श्रावकों के लिए ।

(३) सर्वविरतिसामायिक—यह जीवन भर के लिए समस्त सावद्ययोग (पापकारी प्रवृत्ति) विरति के रूप में है । प्रव्रज्या ग्रहण करते ही श्रमण-श्रमणी जीवनभर के लिए त्रिकरण-त्रियोग से हिंसा आदि सभी पापों का त्याग कर देते हैं । उनका प्रथम चारित्र ही सामायिक चारित्र कहा जाता है ।

समस्त सावद्ययोग विरत—त्यागी श्रमण (श्रमणी) जब बाह्य प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर

आत्मस्थ होते है; आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि गुणों का चिन्तन-मनन-निदिध्यासन करते हैं, चित्त-वृत्तियों को साम्यावस्था में रखते हैं, तब वे सर्वविरति सामायिक में लीन होते हैं।

(४) देशविरतिसामायिक—देश-विरति का अभिप्राय है—आंशिक रूप से व्रत ग्रहण करना । श्रावक अणुव्रतों, गुणव्रतों, शिक्षाव्रतों के रूप में व्रत ग्रहण करता है ।

इनमें से अणुव्रत और गुणव्रत तो वह जीवन भर के लिए ग्रहण करता है और शिक्षाव्रत काल की मर्यादा के साथ ।

श्रावक का सामायिक व्रत भी काल की मर्यादा को लिए हुए होता है; क्योंकि इसकी गणना शिक्षाव्रतों में की गई है । श्रावक के लिए यह काल मर्यादा कम से कम एक मुहूर्त

(४८ मिनट) निर्धारित की गई है । अपनी योग्यता, क्षमता और शक्ति के अनुसार वह इससे भी अधिक काल तक सामायिक की साधना कर सकता है ।

एक मुहूर्त काल ही क्यों ?

वस्तुतः चारित्र सामायिक का एक ध्येय है—वृत्ति परिवर्तन । अब तक जो वृत्तियाँ बहिर्मुखी थीं, वे अन्तर्मुखी बनें । व्यक्ति जो अब तक रूप, रस, गन्ध आदि विषयों में सुख मान रहा था; उसे अपने अन्तर् में अधिक सुख की अनुभूति हो तभी तो वह अन्तर्मुखी बनेगा । जब अन्तर्जगत में उसे बाह्य उपलब्धियों की अपेक्षा अधिक ओज-तेज- स्फूर्ति की उपलब्धि होगी तभी तो वह सामायिक साधना में सुख का अनुभव कर सकेगा । उसे लगेगा कि कुछ उपलब्धि हुई, कोई अलौकिक अनुभव हुआ,

चित्त में शांति की लहर व्याप्त हुई ।

और इन सब उपलब्धियों के लिए ४८ मिनट का समय तो आवश्यक है ही । इतने समय से कम में साधक को किसी भी अलौकिक अनुभूति की उपलब्धि नहीं हो पाती ।

कल्पना कीजिए एक कोरा घड़ा है, कुम्हार के घर से बनकर अभी आया है । उसमें एक बूँद पानी डाला । मिट्टी सोख गई । पानी की बूँद गिरी जरूर पर दिखाई नहीं देती; घड़ा कोरा का कोरा ही रहा । अब इसमें लगातार पानी की बूँदें गिराते जाइये । काफी देर बाद, जब पानी को सोखने की शक्ति घड़े की मिट्टी में नहीं रहेगी तब पानी दिखाई देगा ।

इसी तरह विषय-कषायों से लिप्त मन जो बाह्य विषयों के सुखों में अनुरक्त है, वह प्रारम्भिक क्षणों—कुछ काल की साधना को

सोख जाता है, अपने अन्दर जज्ब कर लेता है, धर्मसाधना से कुछ उपलब्धि हुई, साधक को ऐसी अनुभूति हो ही नहीं पाती ।

अतः वृत्तियों के परिवर्तन के लिए, नई और अलौकिक आत्मिक शक्ति की अनुभूति के लिए कम से कम ४८ मिनट का समय आवश्यक है । वैसे शास्त्रों में कहा गया है— नित्य ४८ मिनट तक सामायिक करने वाला साधक यदि छह महीने तक लगातार साधना करता रहें तब उसे आत्मिक सुखकी अनुभूति होती है । वह अनुभूति शब्दातीत होती है । स्वर्गीय सुख भी उसके समक्ष नगण्य हैं ।

गहराई भी आवश्यक

समय के साथ-साथ गहराई भी आवश्यक है । यदि साधक सामायिक के पाठों को, स्तोत्र आदि को सिर्फ वाणी से

बोलता गया, तो वह केवल तोता-रटन्त हो जायेगा । सिखाने पर तोता भी राम-राम बोलता है; किन्तु उसका यह बोलना उपचार मात्र है, उसे इसका कोई विशेष फल नहीं मिलता ।

इसी तरह सामायिक साधना में पाठों, स्तोत्रों आदि के साथ चित्त की वृत्तियाँ भी संलग्न होनी चाहिए । यह संलग्नता जितनी गहरी होती जायेगी, उतना ही वृत्तियों में परिवर्तन होता जायेगा । उसका प्रभाव जीवन में परिलक्षित होगा ।

शास्त्रों में कहा गया है—सामायिक साधना से क्रोध आदि कषाय और इन्द्रिय-विषयों की तीव्रता कम होती है, धीरे-धीरे साम्यावस्था की उपलब्धि साधक को होती है ।

वैज्ञानिक मान आदि विकारों और

विषय-वासनाओं के लिए एड्रीनल आदि अंतःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों-हारमोनों को जिम्मेदार मानते हैं । एड्रीनल ग्रन्थि के स्राव से मनुष्य अहंकारी बनता है । इसी प्रकार क्रोध, झगड़ालूपन आदि के कारण भी हारमोन्स हैं ।

विचारणीय तथ्य यह है कि सामायिक की साधना किस प्रकार उपशम भाव को बढाती है, वृत्तियों को परिवर्तित करती है ?

सामायिक की साधना में बैठकर श्रावक पहले स्थिर आसन करे, श्वास को सम और लयबद्ध अवस्था में लाये, फिर अपने गुरु अथवा किसी शुभ ध्येय पर चित्त को स्थिर करे, प्राणधारा के प्रवाह को उस ध्येय की ओर मोड़ दे । आलम्बन अथवा ध्येय में चित्त की स्थिरता, एकाग्रता बनी रहे ।

इस संपूर्ण प्रक्रिया का प्रभाव यह होता है कि मन की चंचलता मिटती है, चंचलता मिटने से ग्रन्थियों का स्राव नियंत्रित हो जाता है, विषय-कषायों के आवेग न्यून हो जाते हैं ।

चिकित्सा वैज्ञानिक इस कार्य को विविध औषधियों आदि से निष्पन्न करते हैं, और साधक सामायिक की साधना से ।

इस प्रकार सामायिक की साधना से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों-हारमोनों का नियंत्रण होता है, जिसका परिणाम साधक के जीवन में वृत्तियों के परिवर्तन के रूप में परिलक्षित होता है ।

महामनीषियों ने कहा है कि साधक विषय-कषायों को उपेक्षित कर देता है इसलिये वृत्तियों में परिवर्तन होता है और उपशम भाव की उपलब्धि होती है ।

अन्य लाभ

वृत्तियों के परिवर्तन के साथ-साथ साधक को अन्य लाभ भी सामायिक की साधना से होते हैं—

यदि वह श्वास पर अपना ध्यान स्थिर करे। बस देखता रहे कि श्वास आ रहा है, जा रहा है, मन को स्थिर कर दे और कोई भी विचार-विकल्प मन में न लाए तो उसे ऐसे अनुभव हो सकते हैं—

(१) मानो नख से शिख तक सारा शरीर स्पन्दनों से भर गया है। सर्वत्र स्पन्दन ही स्पन्दन हैं।

(२) समस्त शरीर में जैसे विद्युत का प्रवाह बहने लगा है तथा इसकी गति तीव्र से तीव्रतर हो रही है।

इन दोनों प्रकार के अनुभवों से साधक

में स्फूर्ति का संचार होता है । हताशा, उदासी की स्थिति समाप्त होती है । शरीर की शिथिलता समाप्त होती है, बुद्धि सूक्ष्म-ग्राहिणी बनती है, उसमें निर्मलता आती है ।

सबसे बड़ा आध्यात्मिक लाभ यह होता है कि उसे आत्म-स्वरूप का स्पष्ट आभास होता है । इसे ही आत्म-साक्षात्कार कहा गया है ।

ज्ञान से जिस आत्मा के स्वरूप को जाना था, ज्ञान-सामायिक में जिन आत्मगुणों का चिन्तन किया था; दर्शन से जिस आत्म-स्वरूप की श्रद्धा की थी, दर्शन-सामायिक में जिस आत्मभाव में साधक ने अवस्थिति की थी; चारित्र सामायिक में उसकी पूर्णता होती है—आत्म-साक्षात्कार के रूप में—स्व-संवेदन के रूप में ।

यह अनुभव साधक को अलौकिक होता है, उसे अनुपम रस का रसास्वादन होता है, वह ऐसे अनिर्वचनीय आनन्द में सराबोर हो जाता है जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता । गूँगे केरी शर्करा, खाय-खाय मुस्काय—यह स्थिति हो जाती है ।

यही सामायिक साधना का ध्येय है, उद्देश्य है, लक्ष्य है और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधक सामायिक की साधना करता है ।

इस साधना का व्यावहारिक परिणाम यह होता है कि साधक अवसाद, चिन्ता, तनाव, आशंका, कुशंकाओं से मुक्त हो जाता है, वह वर्तमान क्षण में जीना सीख जाता है । उसके जीवन में प्रमाद, आलस्य आदि की मात्रा न्यूनतम हो जाती है । सावधानी,

सजगता, हिताहित-विवेक का प्राधान्य हो जाता है ।

धर्माचरण के जो तत्व—अहिंसा, अपरिग्रह, अनाग्रह आदि पहले शब्द रूप में थे, अब वे जीवन-व्यवहार का आकार ग्रहण कर लेते हैं । उसके जीवन का कण-कण धर्ममय बन जाता है, लौकिक अथवा संसार संबंधी सभी व्यवहार धर्म से अनुप्राणित हो जाते हैं । जीवन की दिशा ही परिवर्तित होकर धर्मोन्मुखी हो जाती है । अलिप्तता, अनासक्ति, सुख-दुःख-द्वन्द्वातीत अवस्था उसके जीवन में चरितार्थ होती है ।

भय की भावना उसके मन से तिरोहित हो जाती है । संक्षेप में वह जीवन-कला में निष्णात हो जाता है । सुख-शांतिपूर्वक उसका जीवन व्यतीत होता है ।

इस प्रकार सामायिक साधना से आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार के सुफल प्राप्त होते हैं । आत्मिक शांति और शक्ति प्राप्त होती है । इसी आधार पर सामायिक साधना को आत्मशान्ति का स्रोत कहा जाता है ।

● ●

उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

जैन तत्वविद्या के प्रज्ञापुरुष सिद्धहस्त लेखक

जन्म : वि. सं. १९८८, धनतेरस, ७ नवम्बर, १९३१

दीक्षा : ईस्वी सन् १ मार्च १९४१

उपाचार्य पद : १२ मई, १९८७, पूना श्रमण सम्मेलन पर

"आचार" और" विचार" जीवन की दो आँखें हैं, या दो चरण हैं । दोनों ही स्वस्थ और सन्तुलित रहने चाहिए ।

हमारा विचार सदा उदार, अनेकान्तप्रधान, सत्योन्मुखी और सर्वजीवों की कल्याण कामना से ओतप्रोत होना चाहिए ।

हमारा आचार समताप्रधान, अपने गृहीत नियम व मर्यादा का पालन करने वाला और किसी को भी कष्ट ने देने वाला होना चाहिए ।

विचार और आचार की श्रेष्ठता एवं पवित्रता ही हमारा साध्य है ।

—उपाचार्य देवेन्द्रमुनि

प्रकाशक : श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर